अथ सप्तदशं काण्डम्

अथ द्वात्रिंशः प्रपाठकः ॥

अथ प्रथमोऽनुवाकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

इस काण्ड में तीस मन्त्रों का एक ही सूक्त है। इसका ऋषि 'ब्रह्मा' है जो 'देवानां प्रथमा' देवों में प्रथम कहलाता है। यह प्रभु का स्मरण करता है और पुरुषार्थमय प्रशस्त जीवनवाला बनता है। सब गुणों का आदान करता हुआ यह 'आदित्य' बनता है। इस सूक्त का देवता आदित्य ही है—

ऋषिः—**ब्रह्मा** ॥ देवता—**आदित्यः** ॥ छन्दः—**१ षट्पदाजगती, २-५ षट्पदातिजगती** ॥

प्रशस्ततम जीवन

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं सन्धनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान्भूयासम्॥ १॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं सन्धनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रे प्रियो देवानां भूयासम्॥ २॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं सन्धनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रे प्रियः प्रजानां भूयासम्॥ ३॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं सन्धनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रे प्रियः पशूनां भूयासम्॥ ४॥
विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं सन्धनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रे प्रियः समानानां भूयासम्॥ ५॥

१. मैं **ईड्यं नाम**=प्रशंसनीय (स्तुत्य) यशवाले **इन्द्रम्**=शत्रु-विद्रावक प्रभु को **ह्वे**=पुकारता हूँ। उन प्रभु को पुकारता हूँ जो **विषासहिं**=शत्रुओं का अत्यधिक पराभव करनेवाले हैं। **सहमानम्**=शत्रुओं को कुचल देनेवाले हैं। **सासहानम्**=निरन्तर शत्रुओं का विनाश कर रहे हैं। **सहीयांसम्**=शत्रुमर्षकों में श्रेष्ठ हैं। उन प्रभु को मैं पुकारता हूँ जो **सहमानम्**=(be able to resist) मेरे अन्दर उत्पन्न होनेवाले—मुझपर आक्रमण करनेवाले सब प्रलोभनों को रोकने में समर्थ हैं। **सहोजितम्**=मेरे लिए शत्रुपराभवधारी बल का विजय करनेवाले हैं—मुझे 'सहस्' प्राप्त करानेवाले हैं। केवल 'सहस्' ही नहीं **स्वर्जितम्**=प्रलोभनों के निराकरण के द्वारा **स्वः**=आत्मप्रकाश को प्राप्त करानेवाले हैं। **गोजितं**=मेरे लिए ज्ञान की वाणियों का विजय करनेवाले, इन्हें मुझे प्राप्त

करानेवाले हैं और **सन्धनाजितम्**=प्रशस्त धनों का मेरे लिए विजय करनेवाले हैं। २. इसप्रकार बल '(सहस्) को, आत्मप्रकाश (स्वः) को, गौओं को (ज्ञानवाणियों को) व धनों को' प्राप्त करके **आयुष्मान् भूयासम्**=मैं प्रशस्त आयु-(जीवन)-वाला बनूँ। प्रशंसनीय जीवन वही है जिसमें भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धनों की कमी नहीं, जो जीवन ज्ञानमय है, जिसमें आत्मप्रकाश को प्राप्त करने की रुचि है और सहस् (बल) है, शत्रुमर्षक बल है। ३. ऐसा बनकर मैं **देवानां प्रियः भूयासम्**=देवों का प्रिय बनूँ। माता, पिता, आचार्य व विद्वान् अतिथि और अन्ततः प्रभु का भी मैं प्रिय बनूँ। ये सब देव मुझे प्रशस्त जीवन के बनाने में सहायक हों। ४. इसप्रकार का बनकर **प्रियः प्रजानां भूयासम्**=मैं प्रजाओं का भी प्रिय बनूँ। सब लोग मुझे देखकर प्रसन्न हों। मेरा कोई भी कार्य किसी के अहित का कारण न बने। **पशूनां प्रियः भूयासम्**=पशुओं का भी मैं प्रिय बनूँ। गौ आदि का तो घर पर पालन करूँ ही, परन्तु इसके साथ ही इसप्रकार अहिंसा की साधना करूँ कि 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।' इस योगसूत्र के अनुसार मेरे समीप शेर आदि भी वैरत्याग करके आसीन हों। ५. मेरा व्यवहार इतना सुन्दर व अभिमानशून्य हो कि मैं **समानानां प्रियः भूयासम्**=अपने समवर्ग के लोगों का भी प्रिय बनूँ। अपने उत्थान का अभिमान न करूँ और किसी की निन्दा में कभी प्रवृत्त न होऊँ। प्रभु-स्मरण करता हुआ अभिमान आदि दुर्गुणों से दूर रहूँ।

भावार्थ—प्रभु का 'विषासहि, सहमान, सासहान, सहीयान् व सहमान' इन पाँच शब्दों से स्मरण करता हुआ मैं पाँचों कोशों के शत्रुओं का पराभव करूँ। शत्रुपराभव द्वारा 'बल, आत्मप्रकाश, ज्ञान व धन' का विजय करके मैं प्रशस्त जीवनवाला बनूँ। इस प्रशस्त जीवन में मैं 'देवों का, प्रजाओं का, पशुओं का व अपने समवर्गवालों का' प्रिय बनूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**६,७ पदाधृतिः**॥

सुधा व परम व्योम में धारण

उदि॒ह्युदि॑हि॒ सूर्य॒ वर्च॑सा मा॒भ्युदि॑हि। द्विष॑ंश्च॒ मह्यं॑ रध्य॑तु मा
चा॒हं द्वि॑ष॒ते र॑धं॒ तवेद्विष्णो बहुधा वी॒र्या ऽ णि।
त्वं नः॑ पृणीहि प॒शुभि॑र्वि॒श्वरू॑पैः सु॒धाया॑ मा धेहि पर॒मे व्यो ऽमन्॥ ६॥
उदि॒ह्युदि॑हि॒ सूर्य॒ वर्च॑सा मा॒भ्युदि॑हि। यांश्च॒ पश्या॑मि॒ यांश्च॒ न तेषु॑ मा
सुम॒तिं कृ॑धि॒ तवेद्विष्णो बहुधा वी॒र्या ऽ णि।
त्वं नः॑ पृणीहि प॒शुभि॑र्वि॒श्वरू॑पैः सु॒धाया॑ मा धेहि पर॒मे व्यो ऽमन्॥ ७॥

१. हे **सूर्य**=(सरतेः सुवतेर्वा) सबको गति देनेवाले व सबको प्रेरणा देनेवाले प्रभो! **उदिहि**=आप हमारे हृदयाकाश में उदित होइए। हम हृदयों में आपके प्रकाश को देखें। **वर्चसा मा अभ्युदिहि उदिहि**=वर्चस् के हेतु से आप मेरी ओर उदित होइए। हृदय में आपका प्रादुर्भाव मुझे वर्चस्वी बनाएगा **च**=और आपके प्रादुर्भाव से **द्विषन्**=द्वेष करता हुआ शत्रु **मह्यं रध्यतु**=मेरे लिए वशीभूत हो जाए **च**=और **अहम्**=मैं **द्विषते मा रधम्**=वैर करनेवाले के वश में न हो जाऊँ। २. हे **विष्णो**=सर्वव्यापक प्रभो! **तव इत्**=आपके ही ये **बहुधा वीर्याणि**=नानाप्रकार के पराक्रम हैं। ब्रह्माण्ड में सूर्य आदि पिण्डों के निर्माण व धारणरूप एवं शक्तिशाली कर्म आपके ही हैं। हे प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमें **विश्वरूपैः पशुभिः**=इन नानारूपवाले पशुओं से **पृणीहि**=पूरित कीजिए। गवादि पशु दूध आदि देकर हमारे पालन का साधन बनें। हे प्रभो! आप **मा**=मुझे **सुधायाम्**=(सुधा) उत्तम भरण-पोषण करनेवाली अमृतरूप शक्ति में तथा **परमे व्योमन्**=उत्कृष्ट

(विशेषेण अवति) रक्षण-स्थान में—हृदयाकाश में **धेहि**=स्थापित कीजिए। मैं मन को इधर-उधर भटकने देने की अपेक्षा हृदय में मन को निरुद्ध करूँ।

भावार्थ—मेरे हृदय में प्रभु के प्रकाश का प्रादुर्भाव हो। मैं शत्रुओं को वशीभूत करनेवाला बनूँ। ब्रह्माण्ड में सर्वत्र प्रभु के शक्तिशाली कर्मों को देखूँ। प्रभु मुझे आत्मधारण शक्ति दें तथा मन को हृदयाकाश में सन्निरुद्ध कर सकने का सामर्थ्य दें।

७—प्रभुरूप सूर्य मेरे हृदयाकाश में उदित हों। मुझे वर्चस्वी बनाने के लिए वे मुझे प्राप्त हों। हे प्रभो! आप **यान् च पश्यामि**=जिन मनुष्यों को मैं देखता हूँ **च**=और **यान् न**=जिनको नहीं देखता, **तेषु**=उन सबमें **मा**=मुझे **सुमतिम्**=कल्याणी मतिवाला **कृधि**=कीजिए। मैं सबके कल्याण का ही चिन्तन करूँ—किसी के अशुभ को सोचनेवाला न बनूँ। २. हे प्रभो! आपके अनेक शक्तिशाली कर्म हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु के प्रकाश को देखता हुआ, प्रभु के वर्चस् को प्राप्त करता हुआ मैं सबके प्रति सुमतिवाला बनूँ। प्रभु के अनन्त पराक्रम हैं। वे हमें गवादि पशुओं द्वारा दूध आदि पदार्थों को प्राप्त करके पालित करते हैं। वे हमें 'सुधा व परमव्योम' में स्थापित करते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**सप्तपदातिधृतिः**॥

सलिले अप्स्वनाः

मा त्वा॑ दभन्त्सलि॒ले अ॒प्स्व१॑न्तर्ये पा॒शिन॑ उप॒तिष्ठ॒न्त्यत्र॑। हि॒त्वाश॑स्तिं दिव॒मारु॑क्ष एतां स नो॑ मृड सुम॒तौ ते॑ स्याम॒ तवेद्वि॑ष्णो बहु॒धा वी॒र्या ∫णि।
त्वं नः॑ पृणीहि प॒शुभि॑र्वि॒श्वरू॑पैः सु॒धाया॑ मा धेहि पर॒मे व्यो ∫मन्॥ ८॥

१. प्रभु जीव से कहते हैं कि **त्वा**=तुझे **ये**=जो **पाशिनः**=हाथ में पाश लिये हुए विषयरूप व्याध **अत्र**=यहाँ **उपतिष्ठन्ति**=उपस्थित होते हैं, वे **सलिले**=ज्ञान-जल में स्नान करते हुए होने पर तथा **अप्सु अन्तः**=(यज्ञादि) कर्मों के अन्दर व्याप्त होने पर **मा दभन्**=मत हिंसित करें। तू इन विषयों का शिकार न हो जाए, इसी उद्देश्य से तू ज्ञान-जल में निरन्तर स्नान करनेवाला बन तथा यज्ञादि उत्तम कर्मों में लगा रह। **अशस्तिम्**=सब अप्रशस्त कर्मों को **हित्वा**=छोड़कर **एतां दिवम् आरुक्षः**=इस द्युलोक में (देवलोक में) आरोहण कर। यहीं से तो तू ब्रह्मलोक में पहुँचेगा। 'पृष्ठात् पृथिव्या अहमन्तारिक्षमारुहम्, अन्तरिक्षद्दिवमारुहम्, दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम्'। २. प्रभु की प्रेरणा को सुनकर जीव प्रार्थना करता है कि **सः**=वे आप **नः मृड**=हमें सुखी जीवनवाला कीजिए—हमपर आपका अनुग्रह हो। हम सदा **ते सुमतौ स्याम**=आपकी कल्याणी मति में निवास करें। आपकी प्रेरणा के अनुसार चलते हुए कल्याण के भागी हों। ३. आपके अनन्त पराक्रम हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु की इस प्रेरणा को तू सुन कि ज्ञान व कर्मों में लगे रहने पर विषयपाश तुझे न जकड़ पाएँगे। तू सब अप्रशस्त कर्मों को छोड़कर देवलोक में निवास करनेवाला हो। प्रभु से हम प्रार्थना करें कि वे हमपर अनुग्रह करें—हम प्रभु की कल्याणी मति में हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाशक्वरी**॥

महते सौभगाय

त्वं न॑ इन्द्र महते सौभगा॒यादब्धे॑भिः परि॑ पाह्यक्तु॒भिस्तवेद्वि॑ष्णो बहु॒धा वी॒र्या ∫णि।
त्वं नः॑ पृणीहि प॒शुभि॑र्वि॒श्वरू॑पैः सु॒धाया॑ मा धेहि पर॒मे व्यो ∫मन्॥ ९॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमारे **महते सौभगाय**=महान् सौभाग्य

के लिए **अदब्धेभि**=अहिंसित **अक्तुभिः**=प्रकाश की किरणों से **परिपाहि**=सब ओर से रक्षा कीजिए। प्रकाश की किरणों के द्वार सदा कर्त्तव्यपथ को देखते हुए हम कर्त्तव्यमार्ग का अनुसरण करें। यह मार्गानुसरण हमारे सौभाग्य का साधक हो। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—हम प्रभु से निरन्तर प्रकाश की किरणों को प्राप्त करके मार्ग पर ही चलें। मार्ग पर चलते हुए हम प्रथमाश्रम में ऐश्वर्यसाधक शिक्षा व धर्म को प्राप्त करें, द्वितीयाश्रम में संयम द्वारा वीर्य तथा यज्ञ के भागी बनें तथा तृतीयाश्रम में ज्ञान व वैराग्य का साधन करें। यही तो महान् सौभाग्य है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**अष्टपदाधृतिः**॥

प्रियधामा

त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शन्तमो भव। आरोहँस्त्रिदिवं दिवो गृणानः
सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद्विष्णो बहुधा वीर्या ∫ णि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्यो ∫ मन्॥ १०॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **नः**=हमारे लिए **शिवाभिः ऊतिभिः**=कल्याण-कर रक्षणों के द्वारा **शन्तमः भव**=अत्यन्त शान्ति देनेवाले होओ। आपकी कृपा से मैं **त्रिदिवं आरोहम्**='प्रकृति, जीव व परमात्मा' के त्रिविध ज्ञान का आरोहण करता हुआ—त्रिविध ज्ञान को प्राप्त करता हुआ **दिवः गृणानः**=प्रकाशमयी स्तुतिवाणियों का उच्चारण करता हुआ (दिव् द्युतौ स्तुतौ) **सोमपीतये**=शरीर में सोम के पान के लिए समर्थ बनूँ और **स्वस्तये**=कल्याण के लिए **प्रियधामा**=प्रियतेजोंवाला होऊँ। २. हे **विष्णो**! आपके जो अनन्त पराक्रम हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—हमें प्रभु के कल्याणकर रक्षण प्राप्त हों। हम त्रिविध ज्ञान को प्राप्त करते हुए, ज्ञानपूर्वक स्तुति-शब्दों का उच्चारण करते हुए शरीर में सोम का रक्षण करें और प्रिय तेजोंवाले बनकर कल्याण प्राप्त करें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**सप्तपदातिधृतिः**॥

विश्वजित् सर्ववित्

त्वमिन्द्रासि विश्वजित्सर्ववित्पुरुहूतस्त्वमिन्द्र। त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व
स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद्विष्णो बहुधा वीर्या ∫ णि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्यो ∫ मन्॥ ११॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **त्वम्**=आप **विश्वजित् असि**=सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के विजेता हैं **सर्ववित्**=सर्वज्ञ हैं। **त्वं पुरुहूतः**=आप बहुतों से पुकारे जानेवाले हैं। आपकी पुकार हमारा पालन व पूरण करनेवाली है। २. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **त्वम्**=आप **इमम्**=इस **सुहवम्**=उत्तमता से पुकारे जाने योग्य **स्तोमम्**=स्तुतिसमूह को—स्तोत्र को **आ ईरयस्व**=समन्तात् हममें प्रेरित कीजिए। हम सदा आपका स्तवन करनेवाले बनें। **सः**=वे आप **नः**=हमारे लिए **मृड**=सुख कीजिए—अनुग्रह कीजिए। हम **ते**=आपकी **सुमतौ स्याम**=कल्याणी मति में हों। आपकी कल्याणी मति हमारे जीवनमार्ग की प्रदर्शिका हो। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—हम 'विश्वजित्, सर्ववित्' प्रभु का स्तवन करते हुए उस प्रभु की कल्याणी मति को प्राप्त करने के लिए यत्नशील हों। वही मति हमारे लिए मार्गदर्शिका हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**कृतिः**॥

अदब्धः

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे। अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि षंच्छर्म यच्छ तवेद्विष्णो बहुधा वीर्या ∫णि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्यो ∫मन्॥ १२॥

१. हे प्रभो! आप **दिवि**=द्युलोक में **अदब्धः**=अहिंसित सत्तावाले हैं, **उत**=और **पृथिव्याम्**=इस पृथिवीलोक पर भी अहिंसित सत्तावाले हैं। आप सर्वोपरि हैं, आपको कोई अतिक्रान्त नहीं कर सकता। **ते**=आपकी **महिमानं**=महिमा को **अन्तरिक्षे**=अन्तरिक्षलोक में भी **न आपुः**=व्याप्त नहीं कर सकते। आपकी महिमा अन्तरिक्ष से महान् है। वस्तुतः आप तीनों लोकों को अपने एकदेश में ही व्याप्त किये हुए हैं। २. **अदब्धेन**=अहिंसित—कभी नष्ट न होनेवाले **ब्रह्मणा**=इस वेदज्ञान से **वावृधानः**=हमारा वर्धन करते हुए **सः**=वे **त्वम्**=आप **नः**=हमारे लिए **दिवि सन्**=अपने प्रकाशमयरूप में होते हुए **शर्म यच्छ**=सुख दीजिए। आपके ही तो अनन्त पराक्रम हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु की महिमा त्रिलोकी में सर्वत्र व्याप्त है। वे प्रभु अहिंसित वेदज्ञान से हमारा वर्धन करते हुए हमारे लिए सुख प्राप्त कराएँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**प्रकृतिः**॥

पञ्चभूतों की कल्याणरूपता

या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि। ययेन्द्र तन्वाऽन्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वाऽ३ शर्म यच्छ तवेद्विष्णो बहुधा वीर्या ∫णि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्यो ∫मन्॥ १३॥

१. हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **या**=जो **ते**=तेरी **तनूः**=मूर्त्ति, अर्थात् रस-रूप शक्ति **अप्सु**=जलों में है (रसोऽहमप्सु कौन्तेय), **या**=जो तेरी **पृथिव्याम्**='पुण्यगन्ध रूप' शक्ति पृथिवी में है, **वा**=जो तेरी **अग्नौ अन्तः**=तेजरूप शक्ति अग्नि में है (पुण्यो गन्धः पृथिव्याञ्च, तेजाश्चास्मि विभावसौ)। हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **या**=जो **ते**=तेरी शक्ति **पवमाने**=इस निरन्तर बहनेवाली व जीवन को पवित्र बनानेवाली वायु में है, जो वायु **स्वःविदि**=सुख को प्राप्त करानेवाली है और हे **इन्द्र**=सर्वशक्तिमन् प्रभो! **यया तन्वा**=अपनी जिस मूर्त्ति व शक्ति से **अन्तरिक्षं व्यापिथ**=आपने सारे अन्तरिक्ष को व्याप्त किया हुआ है, हे **इन्द्र**=ऐश्वर्यशालिन् प्रभो! **तया तन्वा**=उस स्वरूप व शक्ति से **नः शर्म यच्छ**=हमारे लिए कल्याण दीजिए। २. हे प्रभो! आपके ही निश्चय से अनन्त पराक्रम हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—जल, पृथिवी, अग्नि, वायु व सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में प्रभु की जो शक्तियाँ हैं, वे हमारा कल्याण करनेवाली हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाशक्वरी**॥

प्रभु-प्राप्ति का मार्ग

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुर्ऋषयो नाधमानास्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्या ∫णि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्यो ∫मन्॥ १४॥

१. हे **इन्द्र**=परमैश्वर्यशालिन् प्रभो! **ऋषयः**=तत्त्वद्रष्टा लोग **त्वाम्**=आपको **ब्रह्मणा**=ज्ञानपूर्वक

उच्चारित स्तुति-वाणियों के द्वारा **वर्धयन्तः**=बढ़ाते हुए तथा **नाधमानाः**=आपकी प्राप्ति की कामना करते हुए **सत्रं निषेदुः**=यज्ञों में आसीन होते हैं। २. हे विष्णो! आपके ही तो अनन्त पराक्रम हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु-प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि (क) हम ऋषि=तत्त्वद्रष्टा बनें, (ख) हममें प्रभु-प्राप्ति की प्रबल कामना हो, (ग) ज्ञानपूर्वक-स्तुति वाणियों का उच्चारण करते हुए हम अपने हृदयों में प्रभु को बढ़ाने के लिए यत्नशील हों, (घ) यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाशक्वरी**॥

उत्स

त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्त्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद्विष्णो बहुधा वीर्या ∫णि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्यो ∫मन्॥ १५॥

१. हे प्रभो! **त्वम्**=आप ही **तृतम्**='प्रकृति, जीव व परमात्मा' के ज्ञान का विस्तार करनेवाले **उत्सम्**=ज्ञानस्रोत को **पर्येषि**=व्याप्त किये हुए हो। जो उत्स, **सहस्त्रधारम्**=हज़ारों प्रकार से हमारा धारण करनेवाला है, **विदथम्**=ज्ञानरूप है, हमारे लिए सब ज्ञानों को प्राप्त करानेवाला है तथा **स्वर्विदम्**=आत्मप्रकाश व सुख को प्राप्त कराता है। २. हे विष्णो! आपके ही तो अनन्त पराक्रम हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—प्रभु ही उस ज्ञानस्रोत का व्यापन किये हुए हैं जो प्रकृति, जीव व परमात्मा के ज्ञान का विस्तार करता है, हज़ारों प्रकार से हमारा धारण करता है, हमें ज्ञान प्राप्त कराता तथा सुख देता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**सप्तपदातिधृतिः**॥

ऋत के मार्ग के अनुपात में

त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्त्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि। त्वमिमा विश्वा
भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्थामन्वेषि विद्वांस्तवेद्विष्णो बहुधा वीर्या ∫णि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्यो ∫मन्॥ १६॥

१. हे प्रभो! **त्वम्**=आप ही **चतस्त्रः प्रदिशः**=चारों प्रकृष्ट दिशाओं को—इन दिशाओं में स्थित प्राणियों को **रक्षसे**=रक्षित करते हैं। **त्वम्**=आप ही **शोचिषा**=दीप्ति से **नभसी**=द्युलोक व अन्तरिक्षलोक को **विभासि**=विशिष्टरूप से दीप्त करते हैं। २. **त्वम्**=आप **इमा**=इन **विश्वा भुवना**=सब लोकों में **अनुतिष्ठसे**=व्याप्त होकर स्थित हैं। **विद्वान्**=सर्वज्ञ होते हुए आप **ऋतस्य पन्थाम् अनु एषि**=ऋत के मार्ग के अनुपात में हमें प्राप्त होते हैं। जितना-जितना हम ऋत के मार्ग का अनुसरण करते हैं, उतना ही आपको प्राप्त करनेवाले होते हैं। हे प्रभो! आपके तो अनन्त पराक्रम हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—उस सर्वरक्षक, सर्वव्यापक प्रभु को हम उतना ही प्राप्त करेंगे जितना कि ऋत के मार्ग पर चलेंगे। हमारे कर्म ऋत के अनुसार हों—ठीक समय पर व ठीक स्थान में हों।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**पञ्चपदाविराडतिशक्वरी**॥

बाहर प्रभु की महिमा, अन्दर प्रभु

पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वाङशंस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद्विष्णो बहुधा
वीर्या ∫णि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्यो ∫मन्॥ १७॥

१. हे प्रभो! **पञ्चभिः**=मेरी इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों से आप **पराङ्**=बाहर **तपसि**=दीप्त होते हो। मेरी इन्द्रियाँ बाहर सर्वत्र आपकी ही महिमा को देखती हैं। **एकया**=एक मन की मननशक्ति से आप **अर्वाङ्**=अन्दर दीप्त होते हो। मैं मनन करता हुआ हृदयदेश में आपके प्रकाश को देखता हूँ। २. इस **सुदिने**=सुदिन में जबकि मेरी इन्द्रियाँ सर्वत्र आपकी महिमा को देखने का प्रयत्न करती हैं और मन में आपके प्रकाश का अनुभव होता है, आप **अशस्तिम्**=सब बुराइयों को **बाधमानः**=रोकते हुए—हमसे दूर करते हुए **एषि**=हमें प्राप्त होते हैं। हे प्रभो! आपके अनन्त पराक्रम हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—हम ज्ञानेन्द्रियों से ब्रह्माण्ड में प्रभु की महिमा को देखें, हृदय में मनन द्वारा प्रभु के प्रकाश का अनुभव करें। यह हमारे जीवन का महान् सुदिन होगा जब प्रभु हमारी सब बुराइयों को समाप्त कर देंगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**भुरिगष्टिः**॥

याग, होम

त्वमिन्द्रस्त्वं म॑हेन्द्रस्त्वं लो॒कस्त्वं प्र॒जाप॑तिः। तुभ्यं॒ य॒ज्ञो वि ता॑यते
तुभ्यं॑ जुह्वति॒ जुह्व॑तस्तवेद्विष्णो बहु॒धा वी॒र्या ∫ णि।
त्वं नः॑ पृणीहि प॒शुभि॑र्वि॒श्वरू॑पैः सु॒धायां॑ मा धेहि पर॒मे व्यो ∫ मन्॥ १८॥

१. हे प्रभो! **त्वम्**=आप **इन्द्रः**=परमैश्वर्यशाली हो, **त्वम्**=आप **महेन्द्रः**=महान् इन्द्र हो—वृत्र आदि के विनाशक सर्वशक्तिमान् हो (इन्द्रो वै वृत्रं हत्वा महान् अभवत्। ऐ०आ० १.१)। **त्वं लोकः**=आप ही प्रकाश हो, **त्वं प्रजापतिः**=आप सब प्रजाओं के पालक हो। प्रकाश प्राप्त कराके मार्ग दिखाते हो और इसप्रकार हमारा रक्षण करते हो। २. हे प्रभो! **तुभ्यम्**=आपकी प्राप्ति के लिए ही **यज्ञः वितायते**=यज्ञ का विस्तार किया जाता है। इन यज्ञों के द्वारा ही तो आपका उपासन होता है। **जुह्वतः**=आहुतियाँ देनेवाले होमकर्त्ता लोग **तुभ्यम्**=आपकी प्राप्ति के लिए ही **जुह्वति**=आहुतियाँ देते हैं—होम करते हैं। (याज्ञा पुरोवाक्या पुरःसरं हूयमाना यागाः तद्रहिता होमाः) सब याग और होम आपकी प्राप्ति के लिए ही होते हैं। हे प्रभो! आपके तो अनन्त पराक्रम हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—हे प्रभो! आप 'इन्द्र हो—महेन्द्र हो' लोक हो, प्रजापति हो'। आपकी प्राप्ति के लिए ही ये सब याग व होम किये जाते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**अत्यष्टिः**॥

अद्भुत रचना

अस॑ति॒ सत्प्रति॑ष्ठितं स॒ति भू॒तं प्रति॑ष्ठितम्। भू॒तं ह॒ भव्य॒ आहि॑तं॒
भव्यं॑ भू॒ते प्रति॑ष्ठितं॒ तवेद्विष्णो बहु॒धा वी॒र्या ∫ णि।
त्वं नः॑ पृणीहि प॒शुभि॑र्वि॒श्वरू॑पैः सु॒धायां॑ मा धेहि पर॒मे व्यो ∫ मन्॥ १९॥

१. **असति**=अदृश्य अव्यक्त प्रकृति में **सत्**=प्रकृति का विकारभूत यह दृश्य महत्तत्त्व **प्रतिष्ठितम्**=प्रतिष्ठित है। प्रकृति से महत्तत्त्व का प्रादुर्भाव होता है। **सति**=इस महत्त्व में **भूतम्**=भूतपञ्चक—पृथिव्यादि पंचभूत **प्रतिष्ठितम्**=प्रतिष्ठित हैं। यह **भूतम्**=पंचभूत **भव्ये**=इस सब कार्यसमूह में—सब पदार्थों में **आहितम्**=निश्चय से आहित हैं,—अनुगत हैं। यह **भव्यम्**=कार्यजगत् **भूते**=अपने उपादानकारणभूत भूतपंञ्चक में **प्रतिष्ठितम् भूतम्**=आश्रित है। हे विष्णो! आपके ही ये अनन्त पराक्रम हैं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ—संसार का स्वरूप अद्भुत हैं। 'किस प्रकार अव्यक्त प्रकृति से यह व्यक्त महत्तत्व पैदा होता है। किस प्रकार उससे पंचभूतों का प्रादुर्भाव होकर यह संसार प्रकट हो जाता है।' यह सब चिन्तन करता हुआ उपासक यह कह उठता है कि हे विष्णो! आपके ये अनन्त पराक्रम हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**ककुप्**॥

शुक्रः-भ्राजः

शुक्रो ऽसि भ्राजो ऽसि।
स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम्॥ २०॥

१. हे प्रभो! आप **शुक्रः असि**=अत्यन्त निर्मलस्वरूप हैं—कलुष-लेश से भी संस्पृष्ट नहीं हैं—अपापविद्ध हैं। **भ्राजः असि**=दीप्त हैं—सकल-लोक-प्रकाशक तेज से युक्त हैं। २. **सः त्वम्**= वे आप **यथा**=जिस प्रकार **भ्राजता भ्राजः असि**=सकल-लोक-प्रकाशक तेजोमयरूप से दीप्त हैं, **एव**=इसीप्रकार **अहम्**=मैं **भ्राजता**=दीप्तरूप शरीर-कान्ति से **भ्राज्यासम्**=दीप्त होऊँ। तेजोमय आपकी उपासना मुझे भी तेजोमय बनाए।

भावार्थ—प्रभु अत्यन्त निर्मलस्वरूप हैं, तेजस्वी हैं। प्रभु की उपासना से मैं भी दीप्त बन आऊँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**चतुष्पदोपरिष्टाद्बृहती**॥

रुचिः

रुचिरसि रोचो ऽसि। स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं
पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय॥ २१॥

१. हे प्रभो! **रुचिः असि**=आप दीप्तरूप हैं तथा **रोचः असि**=सकललोक के दीपक हैं। प्रकाशस्वरूप होते हुए आप सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित कर रहे हैं। २. **स त्वम्**=वे आप **यथा**=जिस प्रकार **रुच्या**=दीप्ति से **रोचः असि**=सम्पूर्ण संसार को दीप्त करनेवाले हैं, **एव**=इसीप्रकार **अहम्**=मैं **पशुभिः च ब्राह्मणवर्चसेन च**=(पशु=fire) यज्ञाग्नियों से तथा ज्ञान के तेज से **रुचिषीय**=दीप्त जीवनवाला बनूँ। मेरी कर्मेन्द्रियाँ यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करें तो मेरी ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान के तेज को दीप्त करनेवाली बनें। इस प्रकार ये यज्ञ व ज्ञान मुझे दीप्त जीवनवाला बनाएँ।

भावार्थ—प्रभु दीप्त हैं, संसार के दीपक हैं। मैं भी यज्ञों को करता हुआ व स्वाध्याय द्वारा ज्ञान को बढ़ाता हुआ चमकूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**२२ अनुष्टुप्, २३ निचृद्बृहती**॥

ज्ञानोदय+अन्धकारविलय

उद्यते नमः उदायते नम उदिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः॥ २२॥
अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः॥ २३॥

१. **उद्यते**=उदय होते हुए ज्ञानसूर्य के लिए **नमः**=नमस्कार हो, **उदायते**=कुछ उदित हो गये इस ज्ञानसूर्य के लिए **नमः**=नमस्कार हो और **उदिताय**=उदित हुए इस ज्ञानसूर्य के लिए **नमः**=नमस्कार हो। २. 'उद्यन्' प्रकृतिविज्ञान सूर्यवाले **विराजे**=अतएव विशिष्टरूप से दीप्त

होनेवाले इस पुरुष के लिए **नमः**=हम आदर देते हैं। 'उदायत्' ज्ञानसूर्यवाले इस **स्वराजे**=आत्मज्ञान की दीप्ति से दीप्त पुरुष के लिए **नमः**=हम प्रणाम करते हैं। उदित ब्रह्मज्ञान सूर्यवाले इस **सम्राजे**=सम्यक् दीप्त पुरुष के लिए **नमः**=हम नमस्कार करते हैं। ३. उद्यन् ज्ञानसूर्य के होने पर इस **अस्तंयते**=अस्त को जाते हुए वासनान्धकार के लिए हम **नमः**=प्रभु के प्रति नमन करते हैं। 'उदायत्' ज्ञानसूर्य के होने पर **अस्तम् एष्यते**=कुछ अस्त हो गये वासनान्धकार के लिए **नमः**=हम प्रभु का नमन करते हैं और 'उदित' ज्ञानसूर्य के होने पर **अस्तमिताय**=अस्त हो गये वासनान्धकार के लिए **नमः**=हम प्रभु का नमन करते हैं। अस्त को जाते हुए वासनान्धकार के होने पर **विराजे**=विशिष्ट दीप्तिवाले इस पुरुष के लिए **नमः**=आदर हो। कुछ अस्त हो गये वासनान्धकारवाले इस **स्वराजे**=आत्मदीप्तिवाले पुरुष के लिए **नमः**=नमस्कार हो। **अस्तमिताय**=अस्त हुए वासनान्धकारवाले इस **सम्राजे**=सम्यक् दीप्त पुरुष के लिए **नमः**=नमस्कार हो।

भावार्थ—हम ज्ञानसूर्य के उदय के द्वारा वासनान्धकार के विलय के लिए यत्नशील हों, तभी हम विशिष्ट दीप्तिवाले (विराट्), आत्मदीप्तिवाले (स्वराट्) व सम्यक् दीप्तिवाले (सम्राट्) बन पाएँगे।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**विराडत्यष्टिः**॥

आदित्योदय

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह। सपत्नान्मह्यं रन्धयन्मा
चाहं द्विषते रधं तवेद्विष्णो बहुधा वीर्या ∫णि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्यो ∫मन्॥ २४॥

१. **अयम्**=यह **आदित्य**=(आदानात्) सारे ब्रह्माण्ड को अपने में समा लेनेवाला प्रभु **उदगात्**=मेरे हृदयदेश में प्रादुर्भूत हुआ है। गतमन्त्र के अनुसार वासनान्धकार के विलीन होने पर प्रभु का प्रकाश दिखता ही है। यह प्रभु **विश्वेन**=सम्पूर्ण **तपसा सह**=दीप्ति के साथ यहाँ उदित हुआ है। प्रभु ही **सपत्नान्**=काम-क्रोधादि शत्रुओं को **मह्यं रन्धयन्**=मेरे लिए वशीभूत करते हैं। **च**=और प्रभु के अनुग्रह से **अहम्**=मैं **द्विषते मा रधम्**=इस कामरूप शत्रु के कभी वशीभूत न हो जाऊँ। हे विष्णो! आपके पराक्रम अनन्त हैं। शेष मन्त्र १९ के अनुसार।

भावार्थ—हृदयदेश में प्रभुरूप सूर्य के उदित होते ही काम-क्रोध का अन्धकार नष्ट हो जाता है। प्रभु हमारे लिए इन सब शत्रुओं का विनाश कर देते हैं।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रभुरूप नाव

आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये।
अहर्मात्यपीपरो रात्रिं सत्राति पारय॥ २५॥

१. हे **आदित्य**=सबका अपने में आदान करनेवाले प्रभो! **नावम्**=भवसागर को पार करने के लिए नौकारूप जो आप हैं, उनपर **आरुक्षः** (आरोहम्)=मैंने आरोहण किया है। उस नाव पर जोकि **शतारित्राम्**=सैकड़ों चप्पुओंवाली है। प्रभु के रक्षासाधन अनेक हैं। **स्वस्तये**=कल्याण के लिए मैंने इस नाव पर आरोहण किया है। २. हे प्रभो! **अहः मा अति अपीपरः**=दिन में सब अपत्तियों के परिहारपूर्वक मुझे आपने पार किया है तथा **सत्रा**=साथ ही, दिन के साथ मध्य में व्यवधान न करके **रात्रिं अतिपारय**=रात में भी पार ले-चलिए।

भावार्थ—प्रभुरूप नाव पर आरोहण करके हम दिन-रात, सब आपत्तियों से रहित होते हुए भवसागर को तैरते चलें।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शतारित्रा नौः

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये। रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्रातिं पारय॥ २६॥

१. हे **सूर्य**=सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न व प्रेरित करनेवाले प्रभो! मैं **नावम्**=नौकारूप आप पर **आरुक्षः**=आरूढ़ हुआ हूँ। यह नाव **शतारित्रा**=सैकड़ों चप्पुओंवाली है। **स्वस्तये**=यह हमारे कल्याण के लिए है। **रात्रिं मा अति अपीपरः**=रात में आपने मुझे पार किया ही है। अब **सत्रा**=साथ ही, बिना व्यवधान के **अहं अतिपारय**=दिन में भी पार कीजिए।

भावार्थ—प्रभु का आश्रय ही हमें इस भवसागर से तराता है।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**जगती**॥

ज्योतिषा वर्चसा च

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम्॥ २७॥

१. **अहम्**=मैं **प्रजापतेः**=प्रजाओं के रक्षक उस प्रभु के **ब्रह्मणा वर्मणा**=ज्ञानरूप कवच से **आवृतः**=आवृत हुआ-हुआ **च**=और **कश्यपस्य** (पश्यकस्य)=उस सर्वद्रष्टा प्रभु की **ज्योतिषा वर्चसा**=ज्ञानज्योति व तेजस्विता से आवृत हुआ-हुआ **जरदष्टिः**=जीर्णावस्था तक उचित भोगों को भोगता हुआ, **कृतवीर्यः**=सम्पादित शक्तिवाला **विहायाः**=(अहोङ् गतौ) विशिष्ट गतिवाला, **सहस्रायुः**=अपरिमित आयुष्यवाला, खूब ही दीर्घजीवनवाला, **सुकृतः**=पुण्य कर्मों के करनेवाला **चरेयम्**=इस पृथिवी पर विचरण करूँ।

भावार्थ—ज्ञानरूप कवच से आवृत हुआ-हुआ मैं ज्ञानी व वर्चस्वी बनूँ। दीर्घ व सुन्दर जीवन को प्राप्त करूँ। मस्तिष्क में ज्योतिवाला, शरीर में शक्तिवाला बनूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

ज्ञानकवच का धारण

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय॥ २८॥

१. **अहम्**=मैं **ब्रह्मणा वर्मणा**=ज्ञानरूप कवच से **परीवृतः**=अपने को समन्तात् आच्छादित किये हुए होऊँ **च**=और **कश्यपस्य**=उस सर्वद्रष्टा प्रभु की **ज्योतिषा वर्चसा**=ज्ञानज्योति व तेजस्विता से मैं अपने को परीवृत करूँ। २. इसप्रकार ज्ञानकवच को धारण करने पर **मा**=मुझे **याः**=जो **दैव्याः**=देव से प्रेरित **इषवः**=बाण हैं वे **मा प्रापन्**=मत प्राप्त हों, इसीप्रकार वधाय वध के लिए **अवसृष्टः**=छोड़े हुए **मानुषीः**=(इषवः) मानव-बाण **मा**=मत प्राप्त हों। हम ज्ञानकवच को धारण करके उत्तम कर्मों को करते हुए न तो आधिदैविक आपत्तियों का शिकार हों और न ही आधिभौतिक आपत्तियाँ हमें घेर लें।

भावार्थ—ज्ञान का कवच हमें आधिदैविक व आधिभौतिक आपत्तियों से रक्षित करनेवला हो।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पाप व मृत्यु से दूर

ऋतेन॑ गु॒प्त ऋ॒तुभि॑श्च॒ सर्वै॑र्भू॒तेन॑ गु॒प्तो भव्ये॑न चा॒हम्।
मा मा॒ प्रापत्पा॒प्मा मोत मृ॒त्युर॒न्तर्द॑धे॒ऽहं सलि॒लेन॑ वा॒चः॥ २९॥

१. **अहम्**=मैं **ऋतेन गुप्तः**=ऋत के द्वारा—नियमित क्रियाओं के द्वारा रक्षित किया गया हूँ **च**=और **सर्वैः ऋतुभिः**=सब ऋतुओं से रक्षित हुआ हूँ। ऋतुचर्या के ठीक पालन के कारण स्वस्थ बना हूँ। **भूतेन भव्येन च गुप्तः**=उपादानकारणभूत 'पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश' रूप पञ्चभूतों से तथा इन भूतों से उत्पन्न शरीर आदि से मैं **गुप्तः**=सुरक्षित हुआ हूँ। इन भूतों के साथ उचित सम्पर्क से स्वाभाविक जीवन बिताने से मैं स्वस्थ बना दूँ। २. **मा**=मुझे **पाप्मा**=पाप **मा प्रापत्**=मत प्राप्त हो। **उत**=और **मृत्युः मा**=मृत्यु भी मत प्राप्त हो। पाप का परिणाम ही मृत्यु होती है। **अहम्**=मैं **वाचः**=ज्ञान की वाणियों के **सलिलेन**=जल से **अन्तर्दधे**=अपने को अन्तर्हित करता हूँ। इनसे अन्तर्हित होने पर मुझ तक पाप व मृत्यु का पहुँचना नहीं हो पाता। जैसे जल से भरी खाई (परिखा) शत्रु को किले की दीवार तक नहीं आने देती, इसीप्रकार ज्ञानजल से अन्तर्हित मुझ तक ये पाप व मृत्यु नहीं पहुँच पाते।

भावार्थ—मेरा जीवन नियमित हो। ऋतुचर्या का मैं ठीक से पालन करूँ। पृथिवी आदि पञ्चभूतों व तज्जन्य सूर्य आदि से मेरा समुचित सम्पर्क हो। साथ ही ज्ञान के जल से मैं अपने को सदा पवित्र बनाऊँ। इसप्रकार पाप व मृत्यु से मैं बचा रहूँ।

ऋषिः—**ब्रह्मा**॥ देवता—**आदित्यः**॥ छन्दः—**जगती**॥

'अग्नि-सूर्य, उषाएँ व पर्वत'

अ॒ग्निर्मा॑ गो॒पा परि॑ पातु वि॒श्वत॑ उ॒द्यन्त्सूर्यो॑ नुदतां मृ॒त्युपा॒शान्।
व्यु॒च्छन्ती॑रु॒षस॒ः पर्व॑ता ध्रु॒वाः स॒हस्रं॒ प्राणा मय्या य॑तन्ताम्॥ ३०॥

१. **गोपा**=जीवन का रक्षक **अग्निः**=अग्नितत्त्व **मा**=मुझे **विश्वतः परिपातु**=सब ओर से रक्षित करे। शरीर में उचित मात्रा में अग्नितत्त्व जीवन के लिए आवश्यक है। वस्तुतः यही जीवन का रक्षण करता है। **उद्यन् सूर्यः**=उदय होता हुआ सूर्य **मृत्युपाशान्**=रोगों के बन्धनों को **नुदताम्**=हमसे दूर धकेलनेवाला हो। 'उद्यान्नादित्यः क्रिमीन् हन्ति निम्लोचन् हन्तु रश्मिभिः' उदय होता हुआ सूर्य रोगकृमियों को नष्ट करता ही है, अस्त होता हुआ सूर्य भी रश्मियों से इन कृमियों का विनाश करता है। २. **व्युच्छन्ती**=अन्धकार का विवासन करती हुई **उषसः**=उषाएँ तथा **ध्रुवाः पर्वताः**=अपने स्थान से च्युत न होनेवाले पर्वत मुझसे मृत्यु व पापों को दूर करें। उषा का वायुमण्डल तथा पर्वतों का वायु ओज़ोनगैस की अधिकतावाला होता है, अतएव यह स्वास्थ्यजनक है और मृत्यु को दूर करता है। हे प्रभो! 'अग्नि, सूर्य, उषा व पर्वतों' का सम्पर्क हमें स्वस्थ बनाए—मृत्यु को हमसे दूर रक्खे। **सहस्रं प्राणाः**=अपरिमित प्राणशक्तियाँ **मयि**=मुझ में **आयतन्ताम्**=विविध चेष्टाओं का सम्पादन करनेवाली हों, अर्थात् शरीर में प्राणों का कार्य समुचितरूप से चलता रहे।

भावार्थ—हमारे जीवन में 'अग्नि, सूर्य, उषाएँ व पर्वत' सब रोगों को दूर करनेवाले हों। शरीर में प्राणों के विविध कार्य ठीकरूप में चलते रहें।

॥इति सप्तदशं काण्डम्॥